THE TIMES OF INDIA

Date: 16-07-26

Dal Is A Bright Idea

A weak monsoon should nudge farmers to grow more pulses, oilseeds and millets, not thirsty sugarcane

TOI Editorials

We knew in April this was going to be a weak monsoon. With half of July gone, around 400 of India's districts have a rain deficit. That's a challenge for Indian agriculture, which is still highly rain-dependent. Govt data shows about 45% of our net sown area is rain-fed. So, this was an opportunity for govt to nudge farmers towards hardy, nutritionally superior and environment-friendly crops, like millets, oilseeds, and pulses. Instead, as TOI reported on Tuesday, total acreage under these three crop categories has fallen sharply – pulses 23%, coarse cereals 22%, and oilseeds 21%.

This is clearly a costly problem. Pulses are a key source of protein in Indian diets. They also boost soil fertility. But in a good year, India imports about a fifth of its requirement. This time, it will need to import much more. Likewise, about 55% of India's edible oil requirement is normally met through imports. With sown area down, expect a bigger import bill. Millets aren't a major import, but when production falls, prices will rise, and the campaign to make them popular will suffer.

Given the monsoon situation, perhaps some of this decline is unavoidable. But what's shocking is that, despite the rain deficit, sown area under sugarcane – the most water-hungry crop – has increased . Why are farmers running their tubewells overtime, depleting ground water, for this cash crop? The answer is cash. Since petrol is now mandatorily sold with 20% blended ethanol, and sugarcane is feedstock for it, its cultivation has become remunerative. So, instead of being guided by govt's well-intentioned "Missions" on pulses, oilseeds and coarse cereals, farmers are simply following the money, even if it involves environmental and social costs. Govt should take notice, and tweak its support-price signals.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 16-07-26

English, As Indian As Languages Come

ET Editorial

The fact that you're reading this column without realising you're proficient in a foreign language should be evidence eough for the Supreme Court to conclude that English has be me an "indigenous Indian language. That the same word- English'-pertains to the language, people of England, as well as anything connected to that British country may have confused sceptics. It shouldn't. Like my other import, this col onialone, too, has grown roots as one of the many languages the disposal of India's voluble citiary English, as used in In- dia in its

many accents and forms, is a classic case of healthy appropriation. The fact that it is shared globally adds to, not subtracts from, its identity as aglocal Indian language.

Indian English-a regular option, like American English or British English, on any online drop-down language me for a user to choose from--is a language of foreign origin that has been forgodandsh THIS WAY PLEASE Aped for our own communicative purposes. Apart from words singularly Indian like propone, chargesheet' and 'godown', English has curried favour with all things India'andhas gain- edit. Language Nazis who believe angrezi to be exclusively a BBC bhasha or the language fit only for English people, areas anachronistic as those who still see it as 'colonial'.

Genius of English lies precisely in its 'impurity, and ability to thrive by linguistic theft. It has no canon (like French) and, therefore, isn't ossified. This promiscuity is its superpower, giving it its super reach. English in India is Indian by naturali sation. It has flourished here not because it was imposed from outside but because it was appropriated. Languages like food, are not defined by where they come from, but by where they end up being consumed.

दैनिक भास्कर

Date: 16-07-26

हमारा फोकस रिन्यूएबल एनर्जी पर हो तो बेहतर

संपादकीय

पेट्रोल में 20% एथेनॉल मिलाने की नीति विगत अप्रैल में अमल में लाई गई थी यानी मूल लक्ष्य से पांच साल पहले। इससे क्रूड आयात घटा और 159 लाख करोड़ की विदेशी मुद्रा बची। इसका 1.18 लाख करोड़ किसानों को मदद में गया। लिहाजा सरकार अब 25-30% ब्लेंडिंग करने की सोच रही है। देखने में तो यह ठीक लगता है क्योंकि लाभ किसानों को मिल रहा है, लेकिन क्या सरकार ने सीईईडब्ल्यू की रिपोर्ट देखी है जिसके अनुसार 2032 से पेट्रोल की मांग घटने लगेगी, क्योंकि लोग तेजी से ईवी की ओर बढ़ रहे हैं? 2025-26 में ही ईवी गाड़ियां 8.5% हो चुकी हैं। विशेषज्ञों के अनुसार एक एथेनॉल प्लांट का जीवन 25-30 साल होता है, जबकि पेट्रोल की खपत वर्ष 2032 में 5700 करोड़ लीटर से घटते हुए वर्ष 2050 में मात्र 3700 करोड़ लीटर रह जाएगी। एक तरफ गैर-जीवाश्म ऊर्जा के रूप में ईवी पर रुझान और दूसरी और पेट्रोल की घटती मांग एथेनॉल उद्यमियों को हतोत्साहित कर रही है। इसके अलावा अगर एथेनॉल मिलाने पर और जोर दिया गया तो किसानों को धान की खेती से हटाकर दलहन और तिलहन की खेती को ओर उन्मुख करने के सरकारी प्रयास को पलीता लगेगा। क्यों न एथेनॉल ब्लेंडिंग को 20% पर ही रोककर सोलर और विंड जैसी रिन्यूएबल एनर्जी

को और अधिक बढ़ाएं और इसके लिए जरूरी स्टोरेज सिस्टम को मजबूत करें? रिन्यूएबल एनर्जी सर्वश्रेष्ठ है, बशर्ते इसकी स्थापना- लागत और स्टोरेज की कीमत को तकनीकी इनोवेशन से घटाया जा सके, जैसा जापान और चीन ने किया है।

Date: 16-07-26

ई-20 सरकार है, हम थाली के बैंगन

नवनीत गुर्जर

ई-20 ऐसा पेट्रोल है, जिसमें 20 प्रतिशत एथेनॉल और 80 प्रतिशत पेट्रोल होता है। देशभर के पंपों पर अब ये एथेनॉल मिक्स पेट्रोल ही मिल रहा है। एथेनॉल दरअसल, गन्ने, मक्का और कुछ अन्य कृषि उत्पादों से बनता है। पेट्रोल में एथेनॉल मिलाने के पीछे सरकार तीन मुख्य वजहें बताती है। पहली, प्रदूषण कम करना। दूसरी, कच्चे तेल के आयात में कमी करना और तीसरी, किसानों की आय बढ़ाना।

प्रदूषण कम करने का तर्क सही हो सकता है, लेकिन कच्चे तेल का आयात घटता है तो इस एथेनॉल मिक्स पेट्रोल के दाम क्यों नहीं घटे? यह तो सरकार भी मान रही है कि इस पेट्रोल से गाड़ियों का माइलेज कम हो रहा है। इस्तेमाल करने वालों का कहना है कि गाड़ियों का एवरेज लगभग तीन से सात प्रतिशत घट रहा है। यह भी कहा जा रहा है कि इस मिक्स पेट्रोल के कारण जो थोड़े पुराने वाहन हैं, उनके इंजन पर बुरा असर हो सकता है। इस तरह के वाहनों के लिए दूसरा कोई विकल्प ही नहीं छोड़ा गया है।

जहां तक किसानों का सवाल है- उनका गन्ना कौन-सा दोगुनी कीमत पर बिक रहा है? वे तो वर्षों से अपना सारा गन्ना बेच ही रहे हैं। वो भी कम से कम दाम पर। वैसे भी एथेनॉल बड़ी मात्रा में अमेरिका से आयात किया जा रहा है। 2024 का आंकड़ा ही लें तो भारत ने 67.98 करोड़ लीटर एथिल अल्कोहल आयात किया था, जिसमें करीब 92 प्रतिशत यानी 62.29 करोड़ लीटर केवल अमेरिका से आया था।

सरकार का कहना है कि एथेनॉल मिक्स पेट्रोल के खिलाफ उसके पास कोई शिकायत नहीं आई है। हम जो इसका इस्तेमाल धड़ल्ले से कर रहे हैं, दरअसल थाली के बैंगन हैं। हमारा कोई पक्ष ही नहीं है। मत ही नहीं है। कोल्हू के बैल की तरह घूमते जा रहे हैं बिना सिर उठाए। पीछे से कोड़े भी पड़ रहे हैं, लेकिन मजाल कि उफ भी कर दें!

जो सरकार कर दे वही सच! जो सरकार कह दे वही ब्रह्मवाक्य! हमें न किसी तरह की महंगाई से फर्क पड़ता, न किसी तरह के गलत निर्णय से! दरअसल, ठहरकर, रुककर सोचने का हमारे पास वक्त ही नहीं है। सचाई

तो ये है कि हम चेहरे देखकर तिलक करने के आदी हो चुके हैं। मुद्दों पर न तो हम बात करना चाहते और न ही उन्हें छूना चाहते।

दरअसल, मुद्दों पर बात करने के लिए पढ़ना जरूरी होता है। उससे हमारा कोई वास्ता ही नहीं रहा। हम इंस्टाग्राम, फेसबुक और वॉट्सएप के मुरीद हो चुके हैं। यहां जो कोई, जो कुछ भी कह देता है, उसी को सच मान लेना हमारी फितरत हो गई है। हम अपने बच्चों को भी किताबों से बुरी तरह दूर करते जा रहे हैं।

किसी ने कहा- गांधी जी ऐसे थे, हमने मान लिया। अब कोई कह रहा है गांधी वैसे थे, हमने इसे भी मान लिया। एक लंगोटी में पूरा जीवन काट देने वाली इस महान आत्मा के बारे में हमने कभी कुछ पढ़ना चाहा ही नहीं। पढ़ भी नहीं पाए। यही सब नेहरू जी के बारे में भी हुआ। ठीक है, अब का दौर भी महान है और इसका कोई मुकाबला नहीं हो यह भी संभव हो, लेकिन गांधी-नेहरू का दौर, तब की परिस्थितियां और उन हालात के बीच देश को खड़ा करना, खड़ा रखना कोई मामूली बात थी क्या? जाने क्यों हम पढ़े-लिखे बिना तुलनाओं में चले जाते हैं! कुल मिलाकर बात ये है कि हमें किसी से कोई मतलब नहीं रहा। ज्वलंत मुद्दों से तो बिलकुल नहीं।

खैर, बात ई-20 की हो रही थी। एक केंद्रीय मंत्री कह रहे हैं कि एथेनॉल तो वर्षों से मिला रहे हैं। तब कारों को नुकसान क्यों नहीं हुआ? वर्षों से मिला रहे होंगे- दो-चार प्रतिशत। अब तो पूरा 20 प्रतिशत मिला दिया। अब तो नुकसान जितना भी हो, होगा ही। आखिर तो चीजों का फायदा या नुकसान उनकी मात्रा पर ही निर्भर होता है! उस मात्रा पर बात क्यों नहीं करते!

दैनिक जागरण

Date: 16-07-26

गहरी पीड़ा देने वाला प्रकरण

चेतन भगत, (स्तंभकार विख्यात लेखक हैं)

भारतीय क्या स्वभाव से ही भ्रष्ट होते हैं? ऐसे भ्रष्ट कि भगवान राम तक को न बख्शें। दशकों से लोग जिस मंदिर के स्वप्न की पूर्ति के लिए प्रयासरत रहे, उसी मंदिर से यह बात सामने आई कि जिन लोगों को इस पवित्र संस्थान की सेवा का दायित्व सौंपा गया था, वही शायद यहां चोरी या हेराफेरी करते रहे। यह किसी सरकारी विभाग, ऐरे-गैरे ठेकेदार या अनाम कंपनी से नहीं, बल्कि भगवान राम की संपदा में ही सेंधमारी का मामला है। याद रहे कि इस मंदिर निर्माण के संकल्प की पूर्ति में कई पीढ़ियां खप गईं। इस मुद्दे ने देश की

राजनीति की दशा-दिशा को बदल कर रख दिया। समुदायों के बीच विभाजन की खाई खींच दी। पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा और आधुनिक भारत के सर्वाधिक भावनात्मक मुद्दों में से एक बन गया।

जब राम जन्मभूमि मंदिर का स्वप्न वास्तव में साकार हुआ, तो दुनिया भर में करोड़ों लोगों ने जश्न मनाया। अनगिनत श्रद्धालुओं के लिए यह महज एक और मंदिर नहीं था, उनके लिए यही मंदिर था। ऐसे में यहां चोरी की घटना मन को गहरी टीस देने वाली है। यह कोई सामान्य भारतीय घपला-घोटाला नहीं कि किसी ने कोई गमला चुरा लिया या किसी सरकारी कर्मचारी ने किसी काम के एवज में रिश्वत ली हो। एक ऐसे देश में जहां नैतिकता का पतन एक सामान्य परिपाटी बनता जा रहा हो, वहां राम मंदिर से चोरी का मामला कल्पनातीत ही प्रतीत होता है। गर्त में जा रही नैतिकता को अपनी नियति मान चुके समाज के लिए भी यह पाप की पराकाष्ठा है।

जिस प्रकरण ने समूचे देश की चेतना को झकझोर कर रख दिया, उसके उजागर होने पर भी हमने वही सब किया, जो ऐसी स्थितियों में करने के लिए विख्यात या कहें कि कुख्यात रहे हैं। मसलन-कुछ खलनायकों को चिह्नित करो, कुछ को जेल भेज दो, कड़ी निंदा के साथ मामला रफा-दफा करने के साथ आगे बढ़ो। यह बहुत ही सहज प्रक्रिया है, लेकिन इसमें उस असहज करने वाली सच्चाई को अनदेखा नहीं किया जा सकता कि भारत में भ्रष्टाचार महज कुछ लोगों की करतूतों से ही नहीं फलता-फूलता आया है। यह इस कारण भी अपनी पैठ जमाता गया, क्योंकि तमाम सामान्य भद्र जनों ने इसके साथ जीने और इसे अनदेखा करने के साथ ही इसके संग अनुकूलन की क्षमता विकसित कर ली और इस क्रम में जब कभी अवसर मिला, तो वे इससे लाभ उठाने से भी नहीं चूके।

हम इसी सोच के वशीभूत रहते हैं मानो भ्रष्टाचार केवल दूसरों की करतूत है-जैसे नेता, नौकरशाह और ठेकेदार ही इसके लिए जिम्मेदार हों। क्या वाकई ऐसा है? आखिर ये लोग हैं कौन? ये सभी हमारे इर्द-गिर्द के ही लोग हैं। कहीं न कहीं हमने भ्रष्टाचार को एक नैतिक नाकामी के रूप में लेना बंद कर उसे एक 'कौशल' मानना शुरू कर दिया है। हमारे लिए कर चोरी करने वाला कारोबारी स्मार्ट, ऊपरी कमाई करने वाला सरकारी कर्मचारी 'पूरी तरह सेटल्ड' और कानूनी विसंगतियों का फायदा उठाकर काम निकालने वाला संसाधन-संपन्न माना जाता है। निजी जीवन में ही इसके तमाम उदाहरण देखने को मिल जाएंगे। जैसे अपनी लड़की के विवाह के लिए लिए सरकारी नौकरीपेशा लड़का खोज रहे अभिभावक लड़के की 'ऊपरी कमाई' के बारे में पूछताछ को लेकर शायद ही झिझकते हों।

अक्सर हम धार्मिकता और नैतिकता को एक दूसरे का पर्याय मान लेते हैं, लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं है। धर्म के प्रति अतिशय आस्था रखने वाला व्यक्ति भी दैनंदिन जीवन में बेईमानी कर सकता है। भारतीय समाज में नैतिकता की पूर्ति के लिए धर्म का सहारा लेने की एक विचित्र परिपाटी विकसित हो गई है। मतलब चाहे कारोबारी धोखाधड़ी हो या कमजोर लोगों का शोषण, ऐसा कोई भी 'पाप' करो और किसी मंदिर को चंदा भेजकर स्वयं का आध्यात्मिक शुद्धीकरण समझ लो। मानो भगवान ने कोई 'पाप-पुण्य समायोजन सेवा' चला रखी हो

कि भगवान को दी गई 'रिश्वत' से आपकी बेईमानी में ईमानदारी का भाव घोल दिया जाएगा। राम मंदिर चढ़ावा चोरी प्रकरण ने ऐसी ही तमाम धारणाओं को ध्वस्त किया है। जब धर्म के आवरण वाले परिसर में भी लोभ पर नियंत्रण न रह जाए तो समझिए कि समस्या चरित्र में खोट की अधिक है और इसका समाधान भी अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई भरा है।

कुछ लोग यह दलील दे सकते हैं कि भ्रष्टाचार तो हर जगह है। अन्य धर्मों, संस्थानों और देशों में भी ऐसे प्रकरण सामने आते रहते हैं। मान लिया कि यह भी सही है, लेकिन इससे क्या साबित होता है? कहीं और भ्रष्टाचार होने से यहां के भ्रष्टाचार का मामला कम शर्मनाक नहीं हो जाता। इसे हिंदू बनाम गैर-हिंदू का मुद्दा भी न बनाया जाए। इस मामले में जो आरोपित हैं, वे बाहर से आए हमलावर नहीं, बल्कि भीतर बैठे वे लोग हैं, जिन पर यहां सेवा एवं संचालन का दायित्व था।

इस प्रकरण से यही सीख मिलती है कि एक संस्थान केवल विश्वास के भरोसे ही न रहे। हमारी समस्या यह भी है कि हम कुछ लोगों पर आवश्यकता से अधिक भरोसा कर उन्हें तमाम बुराइयों से परे मान लेते हैं। वास्तव में हमें प्रभावी तंत्र विकसित करने चाहिए। ऐसा नहीं है कि लोग बुरे होते हैं, लेकिन यह भी न भूला जाए कि मनुष्य अंतत: मनुष्य ही होता है और उसके साथ गलतियों की गुंजाइश बनी रहती है। यह बात काफी हद तक सही है कि सभी भारतीय एक जैसे नहीं, लेकिन यह भी उतनी ही सही है कि अधिकांश तो ऐसे ही मिल जाएंगे।

हम हिंदुओं के लिए यह बहुत पीड़ा देने वाला प्रकरण है। हममें से तमाम लोगों ने धर्म को प्रतीकों, पहचान और कर्मकांडों तक सीमित कर लिया है। धर्म मंत्रोच्चार, तीर्थाटन और दान तक ही सीमित नहीं है। धर्म का मर्म तो व्यक्ति के चरित्र से निर्धारित होता है कि आप कैसे धनार्जन करते हैं? कैसे लोगों से व्यवहार करते हैं? जब गलत कार्य करना बहुत आसान लगता हो तो स्वयं को उस राह पर फिसलने से कैसे बचाते हैं? जब कोई न देख रहा हो तो स्वयं को कैसे संचालित करते हैं? याद रहे कि हमारे चरित्र में खोट हो तो घंटों पूजा-पाठ का कोई अर्थ नहीं रह जाता। संभव है कि चढ़ावा चोरी प्रकरण से प्रभु श्रीराम ने हमें संभलने का एक अवसर दिया हो कि न केवल मंदिर परिसर में गड़बड़ियों को दूर किया जाए, बल्कि हम स्वयं एवं समाज को सुधारने के लिए भी प्रयासरत रहें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 16-07-26

निगरानी के उपाय

संपादकीय

सांख्यिकी एवं कार्यक्रम का मंत्रालय ने सेवा उत्पादन का किया। यह उच्च आवृति वाले ऐसे संकेतक के रूप में काम करेगा जो सेवा क्षेत्र की अल्पकालिक आर्थिक गतिविधियों को मापेना। यद्यपि एक समग्र सूचकांक आंकड़ा नहीं दिया गया है लेकिन यह सेवा क्षेत्र के मापन की गतिविधियों में एक अहम ज़ुहाव है क्योंकि सेवा क्षेत्र देश की कुल आर्थिक गतिविधियों में आधे से अधिक का योगदान करता है। 2024-25 को आधार वर्ष बनाकर सूचकांक 19 औपचारिक उप क्षेत्रों की निगरानी करता है जो सेवा अर्थव्यवस्था का करीब 60 फीसदी हैं अप्रैल 2026 की पहली रिपोर्ट व्यापक मजबूती दिखाती है जहाँ 19 में से 14 उप क्षेत्रों ने अप्रैल 2025 की तुलना में अप्रैल 2025 में दो अंकों की वृद्धि दर्ज की।

आवास और खाद्य सेवाएं 37.2 फीसदी बढ़ीं। इसके बाद खुदरा व्यापार (30.8 फीसदी), प्रशासनिक और सहायक सेवाएं (28.7 फीसदी) और अचल संपत्ति (27.7 फीसदी) का स्थान रहा। उच्च भार वाले क्षेत्र जैसे सूचना प्रौद्योगिकी, खुदरा व्यापार और बैंकिंग ने भी मजबूत लाभ दर्ज किए, जिससे संकेत मिलता है कि वैश्विक अनिश्चितताओं के बावजूद सेवाओं की गतिविधि लचीली बनी रही। हालांकि वायु परिवहन क्षेत्र में 14 फीसदी की गिरावट आई, जबकि पिछले वर्ष की इसी अवधि में इसमें 4.5 फीसदी की वृद्धि हुई थी। इससे पहले सेवा उत्पादन सूचकांक बनाने के प्रयासों को विश्वसनीय मासिक आंकड़े नहीं मिलने की वजह से समस्या का सामना करना पड़ा था। माल एवं सेवा कर (जीएसटी) नेटवर्क के विस्तार और प्रशासनिक डेटासेट की बढ़ती उपलब्धता ने हालात को बदला है। इसके चलते इस आईएसपी का निर्माण संभव हुआ और अब हम औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आईआईपी) के समतुल्य मासिक आंकड़े सेवा क्षेत्र से भी प्राप्त कर सकते हैं।

वास्तविक उत्पादन के मापन में सुधार का प्रयास भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। चूंकि सूचकांक सेवाओं के उत्पादन की मात्रा में बदलाव को मापता है जबकि अंतर्निहित आंकड़े केवल लेनदेन के मूल्य को दर्ज करते हैं इसलिए वास्तविक उत्पादन का अनुमान लगने के लिए नॉमिनल टर्नओवर को मूल्य परिवर्तनों के अनुसार समायोजित करना आवश्यक है। वर्तमान में थोक व्यापार को शोक मूल्य सूचकांक के आधार पर पटाया जाता है जबकि अन्ना सेवा क्षेत्र को संबंधित उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों (सीपीआई) या क्षेत्र विशिष्ट उपायों की अनुपस्थिति में उपलब्ध निकटतम सीपीआई के आधार पर समायोजित किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय सांख्यिकीय मानक नॉमिनल टर्नओवर को वास्तविक उत्पादन में बदलने के लिए उत्पादक मूल्य सूचकांकों (पीपीआई) को उपयुक्त डिफ्लेटर मानते हैं। इस संदर्भ में हाल ही में शुरू किए गए आउटपुट पीपीआई, विनिर्माण के लिए परीक्षण इनपुट पीपीआई और सात सेवा क्षेत्रों को कवर करने वाले सेवा पीपीआई भी समय के साथ मदद करेंगे क्योंकि उनमें समय के साथ सुधार होगा।

ब्रिटेन, दक्षिण कोरिया जैसी उन्नत अर्थव्यवस्थाएं और यूरोपीय संघ के सदस्य देश लंबे समय से मासिक सेवा उत्पादन सूचकांक का इस्तेमाल अपनी वृहद आर्थिक निगरानी के अनिवार्य अंग के रूप में करती आ रही हैं भारत के संदर्भ में इस परीक्षण सूचकांक को देश की सेवा अर्थव्यवस्था को परिभाषित करने वाले उपाय के बजाय एक विकसित होते उपाय के रूप में देखा जाना चाहिए। डिजाइन के स्तर पर यह केवल संगठित क्षेत्र को शामिल करता है क्योंकि यह प्राथमिक तौर पर जीएसटी के आंकड़ों पर निर्भर है असंगठित क्षेत्र जो हमारे सेवा

संबंधी सकल मूल्यवर्धन में करीब एक तिहाई का योगदान करता है वह इस सूचकांक के दायरे से बाहर है क्योंकि समुचित आंकड़े उपलब्ध नहीं है। लोक प्रशासन, रक्षा और कई गैर बाजार सेवाएं भी इससे बाहर हैं जबकि स्वास्थ्य और शिक्षा को तब शामिल किया जाएगा जब इनकॉर्पोरिटेड सेवा क्षेत्र उद्यमों के वार्षिक सर्वेक्षण के आंकड़े उपलब्ध हो जाएंगे। अब जबकि बुनियाद रखी जा चुकी है तो आगे बढ़ते हुए मासिक आंकड़ों में उतार-चढ़ाव कम करने के लिए मौसमी समायोजन, व्यापक क्षेत्रीय कवरेज, बेहतर डेटा गुणवत्ता और निरंतर पद्धतिगत सुधार यह तय करेंगे कि क्या यह प्रायोगिक श्रंखला एक मजबूत आर्थिक कितक के रूप में परिपक्व होती है।

Date: 16-07-26

रोजगार की उभरती चुनौती से निपटना आवश्यक

एके भट्टाचार्य

भारत में संगठित क्षेत्र के रोजगार पर तकनीक और आर्टिफिशियल इंटेलिजन्स (एआई) का सबसे चिंताजनक पहलू कुल कर्मचारियों की संख्या में बदलाव से नहीं बल्कि विभिन्न कर्मचारी वर्गों पर इसके असमान प्रभाव से जुड़ा है। यह असमानता अधिक समस्या पैदा कर सकती है। भारत का बैंकिंग क्षेत्र पहले से ही मानव संसाधन नियोजन में ऐसी हलचल के शुरुआती चरणों से गुजरता हुआ प्रतीत होता है।

लगभग 18 लाख कर्मचारियों के साथ अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक भारत के संगठित क्षेत्र में नौकरियों के सबसे बड़े हिस्सेदारों में से हैं। अब इनमें से कुछ अपने कुल रोजगार संख्या में ठहराव या गिरावट दर्ज कर रहे हैं। इस अखबार की एक हालिया रिपोर्ट बताती है कि देश के निजी क्षेत्र के सबसे बड़े बैंक एचडीएफसी बैंक ने नौ वर्षों में पहली बार कर्मचारियों की संख्या में गिरावट दर्ज की। मार्च 2026 के अंत में एचडीएफसी बैंक के कुल कर्मचारियों की संख्या 2.11 लाख बताई गई जो पिछले वर्ष की तुलना में 1.6 फीसदी कम थी। इस गिरावट का कारण बैंक द्वारा तकनीक और एआई के बढ़ते उपयोग को माना जा रहा है।

एचडीएफसी बैंक के कर्मचारियों की संख्या को पर्यवेक्षी (सुपरवाइजरी) और गैरपर्यवेक्षी (गैर सुपरवाइजरी) श्रेणियों में विभाजित करने पर एक बिल्कुल अलग तस्वीर सामने आती है। मार्च 2026 के अंत तक गैर पर्यवेक्षी कर्मचारियों की संख्या लगभग 5 फीसदी घट गई। वहीं पर्यवेक्षी कर्मचारियों की संख्या 11 फीसदी बढ़ी। स्पष्ट है कि तकनीक और एआई का असर गैर पर्यवेक्षी कर्मचारियों पर अधिक दिखाई दे रहा है जहां

केवल एक वर्ष में एचडीएफसी बैंक के कर्मचारियों की संख्या में 8,000 से अधिक की कमी हुई। इसके विपरीत पर्यवेक्षी कर्मचारियों की संख्या में 4800 से अधिक की वृद्धि हुई देश के सबसे बड़े सरकारी बैंक भारतीय स्टेट बैंक का प्रदर्शन इस क्षेत्र में बहुत अलग नहीं रहा। मार्च 2026 के अंत तक इसके कुल कर्मचारियों की संख्या 3.8 फीसदी बढ़कर 2.45 लाख हो गई। लेकिन यह वृद्धि मुख्य रूप से अधिकारियों (2.2 फीसदी) और एसोसिएट्स (8.8 फीसदी) की संख्या में वृद्धि से प्रेरित थी। इसके अधीनस्थ और अन्य कर्मचारियों की संख्या 7 फीसदी घट गई। दूसरे शब्दों में देश के सबसे बड़े बैंक ने भी अपने गैर पर्यवेक्षी कर्मचारियों की संख्या में गिरावट देखी ।

संभावना है कि अन्य बैंकों के भर्ती के आंकड़ों में भी ऐसा ही रुझान नजर आए। मानव संसाधन प्रबंधन की ऐसी रणनीति बैंकों के दृष्टिकोण से समझ में आती है।

बैंकों के लिए यह आवश्यक है कि वे तकनीक को अपनाकर उत्पादकता लाभ हासिल करें और प्रतिस्पर्धी तथा लाभकारी बने रहें । इसी तरह के विचार अन्य क्षेत्रों में भी लागू होंगे जहां तकनीक और एआई का इस्तेमाल कार्यस्थलों में गैर-पर्यवेक्षी भूमिकाओं की आवश्यकता और दायरे को कम करेंगे। इसलिए ऐसे परिदृश्य के निहितार्थों को उस देश के लिए नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए जिसे अपनी विशाल जनसंख्या को रोजगार प्रदान करना है। बैंक और अन्य संगठित क्षेत्र के नियोक्ता तकनीक को अपनाएंगे और अपनाना भी चाहिए। लेकिन सरकार की कौशल विकास और पुनर्कौशल नीतियों को इस चुनौती का सामना करना होगा। यही इस परिदृश्य के निहितार्थ और अनिवार्यताएं हैं।

भारत के नीति-निर्माताओं और विशेषज्ञों ने सही तर्क दिया है कि देश में नौकरियों के सृजन और उन्हें बनाए रखने के लिए कृषि क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता को कम किया जाना चाहिए। आज भी 46 फीसदी से अधिक भारतीय अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। इस हिस्सेदारी को घटाना आवश्यक है ताकि भारत की कृषि उत्पादकता में सुधार हो सके। लेकिन लोगों को कृषि से दूर ले जाना तभी संभव है जब कौशल विकास कार्यक्रम इस तरह तैयार किए जाएं कि लोग विनिर्माण क्षेत्र में नौकरियों के लिए प्रशिक्षित हो सकें। लक्ष्य यह होना चाहिए कि खेतों में काम करने वाले भारतीयों का एक हिस्सा छोटे और मध्यम उद्यमों में लाभकारी रोजगार पा सके ।

लेकिन इस बदलाव को हासिल करना इतना आसान नहीं है। तकनीक और एआई के तेजी से बढ़ते उपयोग के साथ अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर कम होंगे और यह कमी विशेष रूप से निम्न स्तरीय नौकरियों में दिखाई देगी। जैसा कि बैंकिंग क्षेत्र पहले ही दिखा चुका है, उच्च स्तर पर नौकरी के अवसर बढ़ सकते हैं लेकिन गैर पर्यवेक्षी स्तर पर नहीं। दूसरे शब्दों में कृषि क्षेत्र के श्रमिकों को निम्न स्तरीय विनिर्माण या सेवा क्षेत्र की नौकरियों में स्थानांतरित करना चुनौतीपूर्ण होगा। इस चुनौती का सामना करने में विफलता के अपने सामाजिक निहितार्थ हैं। बिना प्रशिक्षण वाले कई युवा अपनी नौकरी के अवसरों को घटते हुए देखेंगे और

लाभकारी रोजगार पाने में उनकी विफलता सामाजिक अशांति, आर्थिक संकट और सत्तारूढ़ दल के लिए राजनीतिक चुनौती का कारण बन सकती है।

दूसरी ओर यह बदलाव कम चुनौतीपूर्ण हो सकता है यदि राज्य या स्थानीय स्तर पर कौशल विकास कार्यक्रम इस तरह तैयार किए जाएं कि वे कम कौशल वाली नौकरियों में लगे कर्मचारियों को आवश्यक प्रशिक्षण दें ताकि वे उभरती नई दुनिया में उपयोगी बन सकें। अकुशल श्रमिकों के लिए नौकरी के अवसर उन लोगों की तुलना में कम होंगे जो एआई और अन्य प्रासंगिक तकनीकों में पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हैं। यहां तक कि वर्तमान विनिर्माण या सेवा क्षेत्र की नौकरियां, जहां अब तक साधारण, अकुशल श्रमिकों को रखा जा सकता था, वे आने वाले दिनों में तकनीकी रूप से प्रशिक्षित और एआई में कुशल कर्मचारियों की मांग करेंगी।

भारत के शीर्ष बैंकों के अलग-अलग मानव संसाधन आंकड़ों से संदेश स्पष्ट है। सरकार को अपने कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय को मजबूत करना होगा जिसे 2014 में स्वतंत्र मंत्रालय के रूप में स्थापित और उन्नत किया गया था। यह मंत्रालय पूरे देश में सभी कौशल विकास प्रयासों के समन्वय के लिए जिम्मेदार है। इसका उद्देश्य कुशल मानव संसाधन की मांग और आपूर्ति के बीच बढ़ते अंतर को दूर करना है। ऐसा व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण ढांचा तैयार करके, कौशल उन्नयन करके, नए कौशल विकसित करके और नवोन्मेषी सोच को बढ़ावा देकर किया जाना है। यह केवल मौजूदा नौकरियों के लिए ही नहीं बल्कि उन नौकरियों के लिए भी आवश्यक है जो भविष्य में पैदा होने वाली हैं।

मंत्रालय का दृष्टिकोण कुशल भारत का है। इस मंत्रालय को नीति कार्रवाइयों और प्रशिक्षण, कौशल विकास तथा पुनकौशल कार्यक्रमों के साथ अधिक सक्रिय और दृश्यमान बनने की स्पष्ट आवश्यकता है ताकि बड़ी संख्या में युवा लाभकारी रोजगार पा सकें। तकनीक और एआई के तेजी से बढ़ते उपयोग ने इस केंद्रीय मंत्रालय के लिए निर्धारित कार्यों को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

Date: 16-07-26

मानव पूंजी के बिना अधूरी विकास यात्रा

देवाशिष वसु, (लेखक मनीलाइफडॉटइन के सह-संस्थापक और मनीलाइफ फाउंडेशन के न्यासी हैं।)

आम तौर पर यह माना जाता है कि आगामी कुछ दशकों तक भारत सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में सालाना 7-8 फीसदी की वृद्धि दर कायम रखेगा और जल्दी ही उच्च मध्य आय वर्ग वाले देशों की श्रेणी में और यहां तक कि उच्च आय वाले देशों की श्रेणी में पहुंच जाएगा (विकसित भारत का सपना) । ऊपर से देखने पर तो यह रफ्तार प्रभावशाली लगती है। नए एक्सप्रेसवे ग्रामीण इलाकों को चीरते हुए निकल रहे हैं, छोटे शहरों में चमचमाते हवाई अड्डे खुल रहे हैं और विश्वस्तरीय डिजिटल ढांचा अरबों के लेनदेन को रियल टाइम या

तात्कालिक समय में संभाल रहा है। लेकिन भारत ऊपरी-मध्य आय वाले देशों की श्रेणी में प्रवेश करने से पहले ही एक तरह की बाधा का जोखिम उठा रहा है। इसकी वजह एकदम साधारण और स्पष्ट है। वह वजह है मानव पूंजी के विकास में गहरी और प्रणालीगत विफलता जिसे अब किसी देश की समृद्धि का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक माना जा रहा है।

परंपरागत अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक वृद्धि को अधिक श्रमिकों, अधिक भूमि और अधिक मशीनों को जोड़ने की यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में देखा। लेकिन जब इसे आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था पर लागू किया जाता है तो यह काम नहीं करता है। भौतिक निवेश जैसे कोई कारखाना, कठोर घटते रिटर्न के नियम के अधीन होता है। कोई देश अपने ट्रैक्टरों या कंप्यूटरों का भंडार दोगुना कर सकता है लेकिन उसे तकनीकी रूप से सक्षम कामगारों की संख्या भी दोगुनी करनी होगी ताकि वे उन्हें चला सकें। वर्ष 1992 में अर्थशास्त्री ग्रेगरी मैनकि, डेविड रोमर और डेविड वी ने मानव पूंजी यानी शिक्षा, स्वास्थ्य और विशिष्ट कौशल के सामूहिक मिश्रण को उत्पादन के स्वतंत्र कारक के रूप में अलग किया। अब भूगोल, संस्कृति या प्राकृतिक संसाधन नहीं बल्कि मानव पूंजी यह तय करती है कि आखिर क्यों कुछ देश अमीर बन जाते हैं जबकि अन्य ठहरे रहते हैं। पुराने मॉडलों में कोई देश यदि भौतिक मशीनरी में किसी अन्य की तुलना में चार गुना अधिक निवेश करता था तो वह अंततः केवल दोगुना ही समृद्ध होता था। लेकिन मैनकिव - रोमर- वेल मॉडल यह साबित करता है कि जब उच्च भौतिक पूंजी निवेश को उच्च मानव पूंजी निवेश से गुणा किया जाता है तो यह एक चक्रवृद्धि प्रभाव पैदा करता है। यानी प्रति श्रमिक संपदा में 16 गुना उछाल । इसके अलावा विकास सिद्धांतकार रॉबर्ट लुकास और पॉल रोमर ने दिखाया कि मानव पूंजी के पास एक अनूठा आर्थिक लाभ है। यह घटते रिटर्न के नियम से प्रभावित नहीं होती।

पूर्वी एशियाई खाका

यह केवल एक शैक्षणिक अवधारणा नहीं है। यह 20 वीं सदी के सबसे बड़े आर्थिक चमत्कारों के पीछे की सच्चाई है। 1953 में दक्षिण कोरिया एक युद्धग्रस्त राष्ट्र था, जहां वयस्क साक्षरता दर केवल 20 फीसदी थी। उसके पास न तेल था, न खनिज, और न ही कोई उल्लेखनीय भौतिक संपत्ति। राज्य ने शिक्षा नीति को अपनी मुख्य औद्योगिक नीति माना। उसने 1960 के दशक में हल्के विनिर्माण को बढ़ावा देने के लिए निरक्षरता समाप्त की, 1970 के दशक में भारी उद्योगों को आपूर्ति देने के लिए व्यावसायिक तकनीकी स्कूलों का विस्तार किया और 1980 के दशक में विश्वविद्यालयों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी संसाधनों से भर दिया। आज यह एक वैश्विक नवाचार महाशक्ति के रूप में खड़ा है।

अचानक 1965 में आजादी मिलने पर सिंगापुर को भी वैसी ही मुश्किल शुरुआत का सामना करना पड़ा। घरेलू जल आपूर्ति तक न होने के कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री ली कुआन यू ने कहा कि द्वीप की एकमात्र संपत्ति उसके लोग हैं। इस नगर राज्य ने अपने शिक्षा तंत्र को विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सटीक तकनीकी आवश्यकताओं के साथ तालमेल वाला बनाया। बाद में कौशल को अप्रचलित होने देने के बजाय इसने सतत

राज्य- वित्त पोषित वयस्क पुनः प्रशिक्षण की पहल की। चीन ने भी मानव पूंजी को ही अपनाया। 1978 में तंग श्याओफिंग द्वारा अर्थव्यवस्था खोले जाने से पहले दशकों के सार्वजनिक निवेश ने पहले ही व्यापक बुनियादी साक्षरता और ग्रामीण स्वास्थ्य देखभाल सुनिश्चित कर दी थी।

जब वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाएं पहुंचीं तो उन्हें केवल सस्ता श्रम ही नहीं मिला बल्कि एक अत्यधिक अनुशासित, साक्षर कार्यबल भी मिला जो खाकों को पढ़ने और जटिल असेंबली को निष्पादित करने में सक्षम था। इसके बाद चीन ने मानव इतिहास में सबसे बड़ा उच्च शिक्षा विस्तार किया। आज वह हर साल 1 करोड़ से अधिक छात्रों को स्नातक कर रहा है, जिनमें भारी संख्या इंजीनियरिंग की होती है, ताकि बिजली से चलने वाले वाहनों और हरित प्रौद्योगिकी में विश्व का नेतृत्व कर सके।

भारत का विरोधाभास

हमारे देश ने उच्च शिक्षा को माध्यमिक की जगह तरजीह दी जिससे एक विश्वस्तरीय शिक्षित अभिजात वर्ग पैदा हुआ। इसके प्रमुख तकनीकी संस्थान और बिजनेस स्कूल सिलिकन वैली के मुख्य कार्यकारी अधिकारियों और बेंगलूरु में वैश्विक क्षमता केंद्रों को शक्ति देने वाले इंजीनियरों की आपूर्ति करते हैं। लेकिन 1.4 अरब लोगों की अर्थव्यवस्था कुछ लाख टेक पेशेवरों के सहारे ऊपरी मध्य आय का दर्जा हासिल नहीं कर सकती। अरबों डॉलर भौतिक अधोसंरचना में लगाए जा रहे हैं वहीं बुनियादी शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य उपेक्षित पड़े हैं।

यदि भारत अपने बहुचर्चित जनांकिकीय लाभांश को एक टिक टिक करते टाइम बम से आर्थिक इंजन में बदलना चाहता है तो उसे दिशा में भारी बदलाव करना होगा। सबसे पहले, सार्वजनिक वित्तपोषण को आक्रामक रूप से शुरुआती सालों में बच्चों के स्वास्थ्य और शिक्षा पर केंद्रित करना होगा। दूसरा, व्यावसायिक प्रशिक्षण को सीधे स्कूल चक्र में एकीकृत करना होगा, जिससे शिक्षा का पैमाना रोजगार योग्यता पर स्थानांतरित हो। तीसरा, राज्य को उद्योगों और प्रशिक्षण केंद्रों के बीच गहरी संस्थागत साझेदारी बनानी चाहिए, पाठ्यक्रम को गतिशील रूप से अद्यतन करते हुए ये न्यूनतम कदम हैं। लेकिन ये विचार पहले से ही जाने-पहचाने हैं और विशेषज्ञों द्वारा कई बार व्यक्त किए जा चुके हैं। सवाल यह है कि क्या हम इन्हें परिणाम और जवाबदेही के साथ लागू करने के लिए पर्याप्त गंभीर हैं ?

जनसत्ता

Date: 16-07-26

पारदर्शिता का पैमाना

संपादकीय

करोड़ों लोगों की आस्था और विश्वास पर बने मंदिरों में वित्तीय अनियमितताओं की परतें अब सिलसिलेवार खुलने लगी हैं। अयोध्या स्थित राम मंदिर और बद्रीनाथ धाम के बाद जम्मू के माता वैष्णो देवी मंदिर में चांदी के चढ़ावे में बड़े पैमाने पर हेराफेरी के आरोप लगे हैं। इस मामले में पुलिस की जांच प्रणाली पर भी गंभीर सवाल उठ रहे हैं। यही वजह है कि अब स्थानीय अदालत ने पुलिस को शिकायत के संबंध में पूरा ब्योरा पेश करने का निर्देश दिया है। ऐसे में अहम सवाल यह है कि आखिर क्या वजह है कि मंदिर प्रबंधन के जिन लोगों पर वित्त की निगरानी, पारदर्शिता सुनिश्चित करने और इसकी संपत्तियों की रक्षा करने का दायित्व होता है, या तो उनके लिए इन जिम्मेदारियों का कोई महत्त्व नहीं होता या फिर वे खुद ही कठघरे में खड़े दिखाई देते हैं। जाहिर है कि व्यापक साठगांठ के बिना यह सब संभव नहीं हो सकता है ।

माता वैष्णो देवी मंदिर में पांच सौ करोड़ रुपए से अधिक मूल्य के चांदी के चढ़ावे में हेराफेरी का आरोप है। इस मामले में पुलिस को शिकायत दी गई थी, लेकिन उसकी रिपोर्ट पर ही सवाल उठने के बाद मामला अदालत पहुंच गया। शिकायतकर्ता का दावा है कि पुलिस की रिपोर्ट में इस बात का कोई जिक्र नहीं है कि इस मामले में प्राथमिकी दर्ज की गई या नहीं, और न ही श्रद्धालुओं द्वारा चढ़ाए गए करीब बीस टन चांदी के संबंध में लगे आरोपों की कोई सार्थक या विस्तृत जांच की गई। दरअसल, हाल ही में मंदिर प्रबंधन की ओर से यह दावा किया गया था कि चढ़ावे के रूप में लगभग 550 करोड़ रुपए की चांदी प्राप्त हुई थी, जिसमें से केवल बीस से तीस करोड़ रुपए की चांदी ही असली थी, जबकि शेष चांदी नकली या मिलावटी थी। इस दावे पर इसलिए भी सवाल उठ रहे हैं, क्योंकि चढ़ावे की चांदी में 'कैडमियम' मिले होने की बात सामने आई है। चूंकि कैडमियम एक विषैली धातु है और इसका व्यापार एवं उपयोग नियमानुसार ही किया जा सकता है तथा इस पर सरकार की कई एजेंसियों की नजर रहती है।

इस मामले में आरोपों को इसलिए भी गंभीर माना जा रहा है, क्योंकि प्रथमदृष्टया यह विश्वास करना मुश्किल है कि इतनी बड़ी संख्या में श्रद्धालु कैडमियम युक्त नकली चांदी खरीद सकते हैं। अगर मंदिर प्रबंधन का यह दावा सच पाया जाता है, तो इसका सीधा मतलब होगा कि देश भर के अनगिनत दुकानदार इस जहरीली धातु वाली मिलावटी चांदी को खरीदने एवं उसे आम लोगों को बेचकर अच्छा-खासा मुनाफा कमाने के गोरखधंधे में लिप्त हैं और यह अपने आप में बेहद गंभीर सवाल खड़े करता है। पुलिस का तर्क है कि इस मामले में शिकायत प्राप्त होने के बाद उसे मंजूरी के लिए पुलिस महानिरीक्षक और अपराध शाखा को भेजा गया था। बाद में इसे किसी अन्य पुलिस प्राधिकरण को स्थानांतरित कर दिया गया। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि जब अपराध शाखा खुद एक अधिसूचित थाना के रूप में काम कर सकती है, तो फिर शिकायत को किसी अन्य प्राधिकरण को स्थानांतरित करने की जरूरत क्यों महसूस की गई ? बहरहाल, मंदिरों में अनियमितता का जैसा स्वरूप सामने आ रहा है, उसके मद्देनजर अब यह जरूरी हो गया है कि देश भर के मंदिरों में चढ़ावे और वित्तीय खातों की निगरानी के लिए ऐसी व्यवस्था बनाई जाए, जिससे संपूर्ण पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित की जा सके।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 16-07-26

भ्रष्टाचार के खिलाफ

संपादकीय

भ्रष्टाचार के खिलाफ किसी भी राज्य सरकार या राजनेता का हर कदम सुखद और स्वागतयोग्य है। विपक्ष में बैठने वाले राजनेताओं के लिए भ्रष्टाचार बड़ा मुद्दा होता है, लेकिन सत्ता में बैठे नेता कभी-कभार ही भ्रष्टाचार के खिलाफ कोई विचार या समाधान पेश करते हैं। भ्रष्टाचार के खिलाफ समाधान पेश करने वालों की कड़ी में तमिलनाडु के मुख्यमंत्री सी जोसेफ विजय का भी नाम जुड़ गया है। उन्होंने लोगों से कहा है कि जब कोई रिश्वत मांगे, तो इनकार कर दीजिए। उनके राज्य में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी या सत्ता के दुरुपयोग में लिप्त किसी भी व्यक्ति को ऐसे कृत्य की अनुमति नहीं दी जाएगी। मुख्यमंत्री का यह बयान ध्यान खींचता है, लेकिन क्या इसे भ्रष्टाचार के खिलाफ कड़ा कदम कहा जा सकता है? दरअसल, फिल्म अभिनेता रहे मुख्यमंत्री की अपील में सिनेमाई भावुकता ज्यादा है। उन्होंने लोगों से कहा है कि मैं आपके साथ हूं। रिश्वत मांगने वालों से कहे दे कि हमारा बेटा, हमारा भाई हमारा विजय इस राज्य पर शासन कर रहा है। जाहिर है, मुख्यमंत्री की इस बात पर तालियां खूब वर्जी, लेकिन क्या वाकई उनकी सलाह व्यावहारिक है? क्या रिश्वत देने से इनकार करने या मुख्यमंत्री को भाई या बेटा बता देने से भ्रष्ट अधिकारी या नेता सुधर जाएंगे?

अभी ज्यादा वक्त नहीं बीता है। आम आदमी पार्टी के नेता भी जनता और अपनी पार्टी के स्वयंसेवकों को भ्रष्ट अफसरों को बेनकाब करने के लिए अपने स्मार्टफोन का इस्तेमाल कर वीडियो बनाने के लिए प्रोत्साहित करते थे। यह पार्टी करीब एक दशक सत्ता में रही, लेकिन दिल्ली में कितने भ्रष्ट अधिकारियों- कर्मचारियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की गई ? दरअसल, भ्रष्टाचारियों से लड़ने के दावे करना और उनके खिलाफ सक्रियता से लड़ने के बीच बहुत फासला है। यहां कथनी और करनी का अंतर विशाल हो जाता है। ओडिशा में आज भी याद किया जाता है कि वहां के मुखर मुख्यमंत्री बीजू पटनायक ने साल 1991 में सार्वजनिक रूप से नागरिकों को भ्रष्ट अधिकारियों को पीटने के लिए प्रोत्साहित किया था, लेकिन लगे हाथ यह भी कह दिया था कि पीटने से पहले मेरी मंजूरी के लिए मुझे एक टेलीग्राम भेज दें। अब तो वैसे टेलीग्राम का जमाना नहीं रहा, अब साइबर टेलीग्राम व अन्य सोशल मीडिया मंचों का जमाना है, लेकिन संचार माध्यमों की अत्याधुनिकता के बावजूद

भ्रष्टाचार की शिकायत के मोर्चे में हम पिछली सदी में ही छूट गए हैं। भ्रष्टाचार की शिकायत करना पिछली सदी के समान ही कठिन है।

भ्रष्टाचार पर यदा-कदा होने वाले जन सर्वेक्षण साफ बयान कर देते हैं कि देश में कहां कितना भ्रष्टाचार है। बेशक, डिजिटलाइजेशन और 'डायरेक्ट फंड ट्रांसफर' होने की वजह से भ्रष्टाचार घटा है, लेकिन हमारी व्यवस्था में आंतरिक रूप से भ्रष्टाचार विरोधी सख्त उपायों का अभी भी अभाव है। अनेक दफ्तरों या सौदों में पैसों की लेन-देन में पर्याप्त पारदर्शिता नहीं आई है। यह सर्वविदित है कि रिश्वत में सीधे धन लेने के बजाय सेवा या सामग्री लेने का चलन बढ़ा है। हम एक ऐसे दौर में हैं, जब हमारे तंत्र के सबसे विश्वसनीय स्तंभ न्यायपालिका में भी गलत आचरण की खुली शिकायतें सबके सामने हैं। निस्संदेह, विजय जैसे ऊर्जावान मुख्यमंत्री से लोगों को उम्मीद करनी चाहिए। देश के एक अपेक्षाकृत संपन्न राज्य तमिलनाडु में अगर भ्रष्टाचार पर लगाम लगती है, तो लाभ पूरे देश को होगा। दूसरे राज्यों के लोगों को भी भ्रष्टाचार के खिलाफ कदम बढ़ाने के लिए एक नई राह दिखाई पड़ेगी।

Date: 16-07-26

ग्रेट निकोबार परियोजना का विरोध कितना जायज

दिलीप मंडल

विकास या पर्यावरण ? यह बहस नई नहीं है। यह बहस जितनी पुरानी है, उतनी ही भ्रामक भी है, क्योंकि वास्तविक प्रश्न विकास बनाम पर्यावरण का नहीं है। वास्तविक प्रश्न है कि क्या भारत अपने विकास के अधिकार व अवसरों का उपयोग करते हुए पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार रह सकता है? इसका उत्तर 'हां' है। यह केवल संभव ही नहीं, बल्कि सबसे श्रेयस्कर मार्ग भी है।

विकसित भारत बनाना एक राष्ट्रीय स्वप्न है। करोड़ों भारतीयों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाकर देश को निम्न आय वाले देशों की श्रेणी से निकालकर मध्यम आयवर्ग वाले देशों की श्रेणी में शामिल कराना एक पवित्र लक्ष्य है। इसके लिए बिजली, सड़कें, रेल, बंदरगाह, कारखाने, डाटा सेंटर, आधुनिक खेती, गोदाम और आधुनिक बुनियादी ढांचे का व्यापक विस्तार करना होगा। भारतीय दृष्टि यहां ठहरकर सोचने को कहती है और फिर यह मार्ग सामने आता है। ऐसा विकास नहीं चाहिए, जो प्रकृति को केवल लूटे जाने वाले संसाधन के रूप में देखता हो। साथ ही ऐसा पर्यावरणवाद भी स्वीकार्य नहीं हो सकता, जो हरेक राष्ट्रीय परियोजना को संदेह की दृष्टि से देखता हो । ग्रेट निकोबार परियोजना इस बहस को समझने का अच्छा अवसर देती है। निकोबार द्वीप समूह भारत की व्यापारिक क्षमता और सामरिक भविष्य का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मलक्का जलडमरूमध्य के निकट इसकी स्थिति इसे वैश्विक समुद्री व्यापार के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में शामिल करती है। चोल राजाओं के समय

यह व्यापार और सैन्य अभियानों में शामिल जहाजों का महत्वपूर्ण पड़ाव था। आज जब हिंद महासागर में शक्ति संतुलन बदल रहा है, होमुंज जैसे संकट आपूर्ति श्रृंखला की संवेदनशीलता उजागर कर रहे हैं, तब इस क्षेत्र में आधुनिक बुनियादी ढांचा विकसित करना देश की आर्थिक रणनीतिक आवश्यकता है। फिर भी इस परियोजना का विरोध हो रहा है।

किसी भी प्रोजेक्ट के पर्यावरणीय प्रभावों की जांच होनी चाहिए। 'नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल' ने इस परियोजना को मंजूरी देते समय पर्यावरणीय चिंताओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी है, जो उचित है। समस्या तब शुरू होती है जब पर्यावरणीय चिंताओं का उद्देश्य समाधान खोजना नहीं, बल्कि विकास को रोकना बन जाता है। पिछले कुछ दशकों में भारत में एक ऐसी पर्यावरणीय राजनीति उभरी है, जिसका स्थायी भाव विरोध है। मानो विकास स्वयं में एक आपराधिक गतिविधि हो। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह दृष्टिकोण सही नहीं है।

इस बहस का वैचारिक दार्शनिक पक्ष भी है। पश्चिम में लंबे समय तक यह विचार प्रभावशाली रहा कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी है और प्रकृति उसके उपभोग के लिए है। इस सोचने आधुनिक औद्योगिक विकास को गति दी, पर इसी ने संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को भी वैचारिक आधार दिया। इस दृष्टि के सूत्र बाइबिलकी उस व्याख्या मैं मिलते हैं, जो मनुष्य को सृष्टि पर विशेष अधिकार देती है। इसलिए जब पश्चिम के ईसाई देश औद्योगिकीकरण की सीढ़ियां चढ़ रहे थे, तब विकास व पर्यावरण में संतुलन का प्रश्न नहीं उठा। इस्लाम समेत अन्य अब्राहमिक परंपराओं में भी मनुष्य को सृष्टि में विशेष स्थान प्राप्त है। इसलिए वहां प्रकृति के उपयोग को लेकर वैसी दार्शनिक दुविधा नहीं दिखाई देती, जैसी भारतीय परंपराओं में मिलती है।

भारतीय परंपरा प्रकृति को निर्जीव वस्तु नहीं मानती। यहां नदियां, दिशाएं, अग्नि, वायु, समुद्र, पर्वत सब पूजनीय हैं, वृक्षों का धार्मिक महत्व है। और जीव-जंतु पेड़-घास सब सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा हैं। भारतीय चिंतन मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, उसका एक अंग मानता है। ऋग्वेद का मूल स्वर प्रकृति के प्रति कृतज्ञता, सम्मान और सह-अस्तित्व का है। बौद्ध धर्म का मध्यम मार्ग भारत का दार्शनिक लौंप पोस्ट है। न प्रकृति सबसे ऊपर है, न मनुष्य न विकास हर कीमत पर उचित है, न उसका पूर्ण निषेध । इसलिए ग्रेट निकोबार में डीप सी ट्रांसशिपमेंट पोर्ट बनना चाहिए।

आज भी भारत के कंटेनर व्यापार का एक बड़ा हिस्सा सिंगापुर, कोलंबो और अन्य विदेशी बंदरगाहों के जरिये ट्रांसशिप होता है। अंडमान-निकोबार का 94 प्रतिशत क्षेत्र आज भी वनों से आच्छादित है। ग्रेट निकोबार परियोजना से इसका एक छोटा हिस्सा प्रभावित होगा ।